RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-04
April-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी लघुकथाओं में दलित विमर्श

धर्मेन्द्रकुमार एच. राठवा

(शोधछात्र)
आणंद आर्ट्स कोलेज, आणंद, हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर–388120 जि. आणंद (गुजरात)

दलित समाज के जीवन प्रसंग का वर्णन करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है । ऐसा । वर्णन करने वाली रचनाए चाहे दलित जीवन का ऋणात्मक पहलू करती हों या दिशाबोध देती है । दलितीय जीवन–शैली पर लिखना ही दलित साहित्य है ।

भारत का इतिहास एक दृष्टि से कठोर जातिवाद का इतिहास रहा है, जिसे ब्राह्मणवाद के द्वारा प्रारंभ किया गया । वर्ण–व्यवस्था शक्तिशाली लोगों द्वारा अपने निहित स्वार्थों के लिए बनाई गई और बनाई रखी जा रही है । इस वर्ण–व्यवस्था में शूद्रों को निचले पायदान में रख दिया । इन्हें अछूत माना गया, जबकि उत्पादन के हर क्षेत्र लमें इन्हीं के हाथों की छाप अंकित है ।

'दलित' शब्द का प्रयोग समाज के किन वर्गों, जातियों के लिए हो, यह अभी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है । प्रमुख दलित चिंतक लेखक कंवल भारती ने अपनी पुस्तक श्दलित साहित्य की अवधारणाश में लिखा है– "वास्तव में श्दलितश वही व्यक्ति हो सकता है, जो सामाजिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियों से दीन–हीन हो, जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया, जिस कठोर और गंदे कर्म करने के लिए बाध्य किया गया, जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस अछूतों ने सामाजिक–निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वहाँ और सिर्फ वही दलित है ।ष जबकि डॉ. शरण कुमार लिंबाले अपनी पुस्तक श्दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्रश में कहते हैं–"दलित शब्द की व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नही चलेगा । इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा ।"2

सदियों से भारत दलितों के लिए एक खुला यातना शिविर रहा है, जहाँ असभ्यता और अप संस्कृति के साम्राज्य पर मोक्ष, पूज्य, देवता, भाग्य, धर्म आदि का मीठा लेप चस्पा किया हुआ है । यह आज भी जारी है । दलित–समाज का मुख्य प्रश्न सामाजिक समानता और आत्म–सम्मान का है, जिसमें इन्हें सदियों से वंचित रखा गया । शरण कुमार लिंबाले ने दलित को श्बहिष्कृत समाज का नायकश कहते हुए अपने लेख श्दलित साहित्य और अमेरिकन नीग्रो साहित्यश में स्पष्ट किया है कि "दलितों की सामाजिक स्थिति नीग्रो से भी बदतर है ।"3

दलित संदर्भो का साहित्य बीसवी सदी में सामने आया है । समकालीन दौर में दलित समाज पर रचित हिन्दी साहित्य मुख्य रूप से कविताओं और आत्मकथाओं के रूप में आया है । अब तक जितना भी दलित साहित्य सामने आया है उनके मुख्य लेखकों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, कुसुम मेघवाल, मोहनदास नैमिशराय, रतनकुमार सांभरिया, जय प्रकाश कर्दम, सूरजपाल चौहान, विपिन बिहारी आदि हैं । आलोचना क्षेत्र में डॉ. धर्मवीर, कँवल भारती, श्योराजसिंह बेचौन, शरण कुमार लिंबाले, रमणिका गुप्ता आदि ने दलित विमर्श के विभिन्न पक्षों पर काम किया है । हिन्दी दलित आत्मकथाओं में ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठनश गहरे में झकझोर देनेवाली रचना है । सूरजपाल चौहान की आत्मकथाएँ श्तिरस्कृतश और श्संतप्तश नाम से मिलती है । मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरेश दो भागों में प्रकाशित हुई है । इधर भगवानदास की आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' चर्चा में है । इन्हें पढ़कर भारतीय समाज में फैली घोर अमानवीयता के त्रासद उदाहरण सामने आते हैं । ये आत्मकथाएँ जीवंत उदाहरणों के माध्यम से मानो सबसे अनेक सवाल कर रही है और हमारी सामाजार्थिक व्यवस्था पर घन से चोट कर रही हैं । दलित–विमर्श के उपन्यासों में जयप्रकाश कर्दम का 'करुणा' (1986) तथा श्छप्परश (2003) काफी चर्चित रहे हैं । इनसे पूर्व हिन्दी उपन्यासों में सबसे पहले प्रेमचंद ने श्कर्मभूमिश (1932) में गाँधी और अंबेडकर के प्रभाव से अछूतों के मंदिर प्रवेश व उन्हें मकान दिलाने के लिए आंदोलन का विस्तृत वर्णन किया है । इसी प्रकार जगदीश चन्द्र ने श्धरती धन अपनाश (1972) तथा गिरिराज किशोर ने श्परिशिष्टश (1984) में दलित–विमर्श को केन्द्र बनाया है।

दलित–विमर्श की कहानियों इन उपन्यासों से कहीं आगे हैं । इनमें दमन और अपमान के विभिन्न रूप तो मिलते ही हैं, साथ ही दलित–पात्रों में स्वाभिमान और संघर्ष का स्तर भी उभरा है । इन कहानियों से स्पष्ट होता है कि दलित अपनी सामाजिक स्वीकृति और सम्मान के प्रति सजग हैं. यही दलितों की पहली सामाजिक जरुरत भी है । ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'घुसपैठिये' (2003) और श्सलामश संग्रह, कुसुम मेघवाल के 'जुड़ते दायित्व' (1996) और 'अंगारा' संग्रह, मोहनदास नैमिशराय के 'आवाजें' (1998) और 'हमारा जवाब' संग्रह के रूप में दलित संदर्भ का कहानी लेखन भी पिछले

RRIJM 2015, All Rights Reserved

कुछ वर्षों में हुआ है । अतः जाति का दंश और अपमान के विविध रूप इन कहानियों में पूरे असर के साथ देखे जा सकते है ।

हिन्दी लघुकथा लेखन में जिस प्रकार आठवें दशक में तेजी आई है । इसी प्रकार दलित चेतना की लघुकथाएँ भी पर्याप्त संख्या में लिखी जाने लगी है । डॉ. रामकुमार घोटड़ द्वारा संपादित पुस्तक 'दलित समाज की लघुकथाएँ (2008), दलित जीवन की लघुकथाएँ (2017), तथा लघुकथा सप्तक–4 (दलित–सन्दर्भ) (2019) इस दृष्टि से आधार सामग्री का काम करती है ।

आज लघुकथाएँ व्यापक रूप में लिखी जा रही और पढ़ी भी जा रही है इन लघुकथाओं में दलित जीवन विमर्श के साथ ही दलित चेतना के बोध भी देखने को मिलते है । यहाँ पर मैं उन लघुकथाओं को समीक्षात्मक रूप में समाहित कर रहा हूँ जो दलित विमर्श पर केन्द्रित है ।

विक्रम सोनी की **बनैले सूअर'** लघुकथा में दो अनपढ़ ब्राह्मण मजबूरी में चमार के बेटे से खत पढ़वाते हैं । पढ़वाने के बाद पोता होने की खबर से खुश होकर चले ही थे कि चौबे अपना लोटा हथेली ठोंकते हुए बोले– "पंडितजी धिक्कार है हमारी कौम पर । अरे, पंडित जाति की चिठ्ठी चमार पढ़े ? इसकी इतनी हिम्मत...?"4 और दोनों बिसुआ के बेटे को लोटो से ही मार–मारकर खत्म कर देते हैं । अतः बिसुआ चमार का बेटा होने के कारण वे (उनकी नजर में) अच्छी खबर के बीच में भी नफरत को नहीं भूलते । खबर सामयिक है, पर निम्न जाति से नफरत तो सदियों से जमी है, उनकी सत्ता और वर्चस्व का अचूक हथियार है ।

विक्रम सोनी की ही **'जूते की बात'** दलित विमर्श की बेहतरीन लघुकथा है, जिसमें रमोली चमार जब जूता लेकर पंडित सियाराम मिसिर की गर्दन का श्हूलश दूर करने लगा, तो उसकी आँखों के आगे सृष्टि से लेकर इस पल तक निरंतर सहे जुल्मों–सितम और अपमान के दृश्य साकार हो उठे । जब रमोली ने अपनी पूरी ताकात से मिसिरजी की गर्दन पर जूता जड़ दिया । मिसिरजी के मुख से एक प्रकार की टकराहट पैदा हुई, ठीक वैसी ही जब मिसिरजी ने उसके पिता पर झुठा चोरी का इल्जाम लगाया था और मिसिरजी गुण्डे लाठी से उसे धुन रहे थे । तब बाप की दुहाईवाली डकराहट क्या वह भूल पायेगा ? तब रमोली कहता है–"अरे मिसिर देख, तोरा हूल हमार जुतवा मे बैठ गइल ।"5 अतः लघुकथा में गोदान की सिलिया चमारन से जिस प्रकार चमारवाड़े द्वारा लिए गये शालिन बदले से बढ़कर पुरे वर्ग पर किये गये निरन्तर अत्याचारों की सशक्त अभिव्यक्ति है ।

सतीश दुबे की **रीढ़'** लघुकथा सवर्णो की सदियों से चली आ रही मानसिकता की दस्तावेजी रचना है, पर वर्तमान व्यवस्था पर भी तीखा प्रहार करती है । युवा–पुत्र के यौवन का जोश कैसे वृद्ध अनुभवी पिता की सलाह पर ठण्डा होकर धारदार बनता है । सारे आदर्शों एवं संस्कृति को ठेंगा दिखाती नेताई प्रवृत्ति जिस प्रकार विकसित हो रही है वह बड़ी–चिंताजनक एवं निराशाजनक है । ठाकुर पिता अपने पुत्र को दलितों के बारे में कहते है–"गरीब और गरीबी गाँव की रीढ़ हैं... इन लोगों से प्रगति की बात कहो, पर होने मत दो । यह सच है । मैं नहीं पूरा देश, संसद, सभाए, नेता सब कह रहे हैं कि गरीब और गरीबी नहीं तो कोई नहीं ।"6 देश के पिछड़ेपन के मूल में ये ही हालात एवं ऐसी ही मंशा है । अन्यथा आजादी लगभग सात दशकों पश्चात् देश की स्थिति ऐसी क्यों होती । उन उपदेशों को मन्त्रवत् बताकर सतीशजी ने लघुकथा को पैनी धार दी है ।

सतीश दुबे की **'शिष्यत्व'** लघुकथा में दलित वर्ग के प्रति उच्च शैक्षिक योग्यता प्राप्त लोगों में भी भेदभाव अपनाया जाता है । उसका यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है । लघुकथा में रतिराम चौहान नाम का छात्र सवर्ण वर्ग के प्रोफेसर डॉ. अवध बिहारी के घर मिठाई का पैकेट लेकर जाता है । प्रोफेसर उनके विश्वविद्यालय में टोप करने पर उनको होनहार बताता है । रतिराम चौहान जब उनके निर्देशन में पीएच.डी. करने की इच्छा व्यक्त करता है तो प्रोफेसर कहते हैं'देख लेंगे' किन्तु जब उसकी जाति अर्थात् रैदास' का पता चलता है तो स्थान पूरे होने का बहाना कर देते हैं । रतिराम मिठाई के पैकेट के साथ उनके घर से निकल जाता है । दुबेजी रतिराम के आहत मन की अभिव्यक्ति को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं– "निश्चित रूप से रामानन्द ने कबीर तथा द्रोणाचार्य ने एकलव्य की भावनाओं को ऐसे ही आहत किया होगा ।"7 अतः अशिक्षित वर्ग में ही भेदभाव एवं शोषण है ही ऐसा नहीं आज दलित हर जगह प्रताडित होते है ।

सतीश दुबे की ही **'फरीयाद'** लघुकथा में श्रीमन्त किस प्रकार दलित का शोषण करता है, उसका यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है । दलित रामलू कपड़े का धन्धा करता है, पर उधारी उधारी में कंगाल हो जाता है । सभी तरह से निराश होने पर गाँव के श्रीमन्त के पास शिकायत लेकर जाते हैं कि कपड़े का धन्धा किया था, लोगों ने उधार लिया, पैसा वापस नहीं दिया । माँगने गया तो जूती दिखाई । और हिसाब की डायरी श्रीमंत को दी । श्रीमंत फेहरिस्त देखकर, जिसमें उसके सहयोगियों के नाम थे, रामलू को बोलता है कि– "तु यह समझ ले कि कपड़ा, पैसा ऊँची जातवालों को दान कर दिया है । तेरे पूर्वज तर जाएँगे । तू भगीरथ कहलाएगा ।ष8 इस तरह दलित शोषण सतीश दुबेजी इस लघुकथा में व्यक्त करते हैं ।

अमरसिंह की **'खार–खखार'**लघुकथा में सवर्ण जाति के स्वार्थ पाखंड और दलितों के प्रति अंध नफरत को दृढ़ता से उभारा गया है । पंडित, रामरतन गाँव का पुजारी है, उनका जीवन माला, मंदिर, शिवलिंग पर केन्द्रित है, पर उन्हें चिंता है कि मनुस्मृति से चलने वाला कर्म–भ्रष्ट हो रहा है । हालाँकि उनका बेटा पोल्ट्री फॉर्म खोलता है, बेटी बिल्ली पालती है, जो उनकी मान्यताओं के लिहाज से संसाकर भ्रष्ट और मलेच्छ

होने चाहिए । लेकिन उनकी मान्यता बदल जाती है । पर श्छोटी जात के लोगों के बारे में वह नहीं बदलता । जातिवादी संकीर्णता का रूप पंडित रामरतन के शब्दों में देखिए "अछूत कितनी भी डिग्रीया ले ले, अछूत ही रहेगा । अंगूठा टीपने वाला बामन तो बामन ही कहलायेगा। यह ब्रह्मा का विधान है ।"9 लेखक लघुकथा को कठोर धरातल पर ले जाता है । रामरतन की मुर्गियाँ बधुआ भंगी की खखार–बलगम को दनादन चट कर जाती हैं । रामरतन और उसका लड़का दोनों उन मुर्गियों के अंडे बेचते भी हैं और खाते भी है । अतः लेखक प्रकारांत से सवाल करता है–"बधुआ तो अछूत है, पर उसकी खखार ?"10 ऐसे पाखंडी हिन्दू समाज में रहनेवाले लोगों के पास इसका कोई जवाब नहीं ।

सुरेन्द्र चौहान की **'जाति भेद'** लघुकथा एक ही वर्ग में जीवन जीनेवाली दो बालिकाओं पर केन्द्रित है । दोनों बालिकाएँ रेलवे प्लेटफार्म पर मुसाफिरों से भीख माँगती है । पहली लड़की को किसी मुसाफिर द्वारा खाने के लिए पूडियों से भरा लिफाफा दिया जाता है, लेकिन बाद में वहीं खड़ी दूसरी लड़की जब उसी मुसाफिर से अपने लिए खाने को कुछ माँगती है तो वह मुसाफिर उसको बताता है कि उसके पास खाना नहीं बचा है । वह पहली लड़की से चार पूड़ियाँ चाहे ले सकती है । उसे पर्याप्त पूड़ियाँ दी हैं परन्तु वह दूसरी लड़की यह कहकर मना कर देती है कि वह छोटी जाति की लड़की है । लघुकथा की अंतिम पंक्ति देखिए– "नहीं लूँगी उससे ! वो तो... छोटी जाति की है ।"11

अतः लघुकथाकार ने एक ही वर्ग में जाति विभेद को रेखांकित तो किया है । साथ यह विचार भी पाठकों पर छोड़ दिया है कि असल में उस पहली लड़की को पूड़ियाँ देनेवाला मुसाफिर किस जाति का है । जो संपूर्ण जाति को अनिश्चित जातिवाद के घेरे में खड़ा कर देती है । इस लघुकथा में अद्भुत मारक शक्ति है।

पूरनसिंह की लघुकथा **'वचन'** में दलितों पर हो रहे सदियों की पीड़ा एवं अत्याचार को साकार कर दिया है । लघुकथा में मंगुआ चमार ने ठाकुर की खूब सेवा कर दिल जीत लिया । ठाकुर लोगों तक से कहता है कि–"मंगुआ मेरा भाई है । यह जिंदगी इसी की दी हुई है ।... मैं इसका ऋणी हूँ ।ष12 एक दिन ठाकुर ने जिद की कि तुम जो भी मांगोगे, वही दूंगा, चाहे ठकुराइन ही मांग लो । ठाकुर की बहुत जिद पर मंगुआ कहता है– "आप आज सिर्फ एक दिन के लिए मंगुआ चमार बन जाओ।''13 ठाकुर कहता है कि चाहे तो वह उसकी जान माँग लेता । यह कहकर मंगुआ को जमकर पीटता है । अतः यह लघुकथा बताती है कि दलित के प्रति तथाकथित सवर्ण किस सीमा तक घृणा करते हैं ।

रत्नकुमार सांभरिया की **'द्रोणाचार्य जिन्दा है'** लघुकथा दलित के आत्मोत्थान की प्रक्रिया पर परदा डालती है । एक सवर्ण जाति के जिसका स्वयं बेटा भी उसी कक्षा की परीक्षा में सम्मिलित होता है, जिस कक्षा की परीक्षा उसी के बेटे के साथ पढ़नेवाला दलित विद्यार्थी रामदीन भी देता है । उत्तरपुस्तिका के मूल्यांकन में दलित बेटे को सर्वाधिक अंक प्राप्त होते हैं, गुरुजी ने कक्षा पाँच की रिजल्ट शीट को तो अंतिम रूप दे दिया था । उसके बेटे की तुलना में दलित बेटा रामदीन को ज्यादा अंक प्राप्त होते हैं जो सवर्ण शिक्षक को खटकते हैं । सोचता है–"रामदीन ! साला मोची का पूत! इतने अंक ले मरा कि पूरी कक्षा के सिर पर चढ़ बैठा । मेरे खुद के लड़के से भी ऊपर । गाँव थूककर आँट लेगा मुझे की गुरुजी के लड़के से मोची का लड़का ज्यादा होशियार है, जिसका बुढ़ऊ बाप जूते सीकर उसे पढ़ा रहा है ।"14 फलस्वरूप ईर्ष्यावश उस दलित की समस्त उत्तरपुस्तिकाओं का पुनर्मूल्यांकन करता है और उसे परीक्षा में फेल कर देता है । रामदीन परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने से उत्तराधिकार के रूप में अपने बाप का पुश्तैनी धंधा सम्भाल लिया था ।

अंततः इस प्रकार प्रतिभा सम्पन्न छात्र की आशाओं पर कुठाराघात करके एक ऐसे होनहार छात्र के मार्ग को सायास अवरुद्ध कर दिया जाता है, जो दलित वर्ग से होने के बावजूद परिश्रमी है । यह लघुकथा शिक्षा–मन्दिर में जातिगत दुराव के परिशिष्ट को खोलकर रख देती है ।

कमल चोपड़ा की लघुकथा **'जात'** एक जमादारनी को केन्द्र में रखकर रची गई है । जो शादीवाले घर से मिठाई पाकर उसी घर के बाहर की थड़ी पर बैठी हुई है । गली में खेल रहा ढाई पौने तीन वर्ष के नन्हें बाह्मण बालक की नजर जमादारनी को मिली मिठाईवाली थैली पर पड़ती है और वह मचलता हुआ जमादारनी को 'अम्मा' का सम्बोधन देते हुए उससे लड्डु माँगने पर अड़ जाता है । जमादारनी को अपनी 'जात' का एहसास है, लेकिन बालक से अपने प्रति मिला 'अम्मा' का सम्बोधन उसके ममत्वभाव को इतना गहरा देता है कि जमादारनी कुछ क्षण अपनी जात को भूलकर खुद को मनुष्य मान बैठती है और थैली में से लड्डु निकालकर बालक के हाथ में थमा देती है । बच्चे के चेहरे पर खुशी देखकर उसकी आत्मा भी प्रसन्न हो गई लेकिन अगले ही क्षण वह काँप गई–जात का सवाल बन गया तो ? जमादारनी सोचती है जल्दी से यहाँ से निकल जाना चाहिए वर्ना...।

नन्हा खुशी से उछलता लड्डू खाता घर में घुसा । पापा पुछता है ये लड्डू कहाँ से लाया ? अम्मा ने दिया । तब पापा नन्हा को बहुत डाँटा और ज्यादा जिद करने लगा तो दो थप्पड़ जड़ दिए । और कहता है–"साली ब्राह्मण के बच्चे को लड्डू खिलाकर भ्रष्ट करना चाहती है ।"15

अंततः लघुकथा में दलित और उच्चवर्ग के मध्य वैचारिक महासंग्राम खड़ा कर देती है । संस्कारों का मखौले उडाते रिश्ते आवेगों को क्रोध और बहस को एक तरफ धकेल देती है ।

रामकुमार घोटड़ की **'एक युद्ध यह भी'** लघुकथा दलित संदर्भो में संघर्ष–चेतना को प्रतीक रूप में उभारते हुए सवर्णो की संकीर्ण मानसिकता पर छींटाकशी करती है ।

दलित झीमली चार माह पहले वो एक दिन खेत में काम कर रही थी । तब ठाकुर साहब का कुँवर विचित्रसिंह अचानक आ गया और झीमली को दबोच लिया । वो असहाय, रोई चिल्लाई और अपने शील की दुहाई दी । लेकिन उस राक्षस ने सब अनसुनी कर दी । रात के समय झीमली ने अपने पति बदलु को सबकुछ बता दिया । बदलू ने उसे धीर बँधाने की कोशिश की।

पेटदर्द का एक दौरा पड़ा झीमली तड़पने लगी । पेट से आवाज आयी, मुझसे हाथापाई करता है? जानता नहीं 'तुं ठाकुर विचित्र सिंह का अंश हूँ...' दोनों भ्रूण एक–दूसरे पर छीटाकशी करने लगे । लघुकथा की अंतिम पंक्तियाँ देखिए–"तुमने मुझे नीच कहा... नीच कहा मुझे पापी कमीने, हरामी की औलाद...।"16 और उसने अपने सहोदर पर भरपुर ठोकर का वार किया । विचित्र सिंह का अंश लुढकता हुआ जमीन पर आ गिरा ।

बलराम की **'माध्यम'** लघुकथा ग्रामीण दलित यथार्थ की सशक्त रचना है । दिनुवा सांसी को गाँव के बड़े लोगों का नेटवर्क मिलकर अपने शिकंजे से मुक्त नही होने देता । यहाँ सत्य खुलता है कि गाँव के चौधरी के सामने दिनुवा की मर्जी, या विवशता का कोई अर्थ नही है । उसे हर हाल में चौधरी को खुश रखना जरुरी है । नहीं तो चौधरी क्या सचान बाबू तक उसकी तरफ से नजरें फेर लेंगे । अंततः लघुकथा का तात्पर्य यह है कि साधनहीन के जीवन की डोर सामर्थ्यवान के हाथों में ही रहती है । अपने नातिदीर्घ स्वरूप में यह लघुकथा अपनी बात रख जाती है ।

श्यामसुन्दर दीप्ति की लघुकथा **'हिम्मत'** दलित विमर्श की सशक्त कथा है । आज भी खासकर गाँवों–कस्बों में दलितों के साथ भेद–भाव किया जाता है । उन्हें अच्छी नजरों से नही देखा जा सकता । स्कूलों में दलित बच्चों के साथ अछूतों–सा व्यवहार किया जाता है । लघुकथा में एक मजहबी (अवर्ण) का पुत्र बीरा बाप को कहता है कि वह स्कुल नहीं जाएगा, क्योंकि मास्टर बहुत बेइजत करते हैं । पिता संतुष्ट है कि बेटे को जोड़ना–घटाना आ गया यही काफी है । बीरे का सहपाठी छिन्दा मिलता है, तो उसे भी यही कहता है । छिन्दा बीरे को अपने बापु के कटे शब्द दोहराता है "एक लम्बे समय तक, हजारो–हजार साल ही कह लो, यह सब सहा है, अब थोडा समय और बर्दाश्त करों । बापू ने कहा तुम्हें अवसर मिला है । थोड़ी हिम्मत करों । अगर अब भी बीच में छोड़ दिया, तो उसका अंत नहीं होगा ।"17 अंततः लघुकथा का मजबूत पक्ष यह सकारात्मक सोच है, जिसके तहत बीरा और उसका साथी छिन्दा हिम्मत नहीं हारते । संकल्प लेते है कि पढ़–लिखकर, काबिल बन वे अन्याय–अत्याचार का विरोध करेंगे ।

त्रिलोकसिंह ठुकरेला की लघुकथा **'ढोंग'** में ठाकुर रुद्रप्रताप कालू मोची की पुत्री चंपा से चोरी–छिपे खेतों में मिलते हैं । ऐसा कई बार चलता है, एक दिन दोपहर ठाकुर के अकेले घर पर होने के कारण चंपा उसके घर जाकर रसोई में ठाकुर के पास चली जाती है । ठाकुर के आपत्ति करने पर वह कहती है– "सुना है, आत्मा की कोई जाति नहीं होती । यदि यह शरीर मोची है, तो इसे आप कई बार छू चुके हैं। वैसे भी मेरे पिता मोची का धंधा करते हैं, मैं नहीं । यह ढोंग कब तक चलेगा, ठाकुर साहब ?"18 निष्कर्षतः हम कह सकते है कि आज भी हमारे समाज में जातिवादी के आधार पर शोषण किया जाता है ।

दुर्गेश की **'हरिजन'** लघुकथा में जातिगत घृणा और भेदभाव को उभारा गया है । जहाँ एक व्यक्ति को जिन्दा जला दिया गया है । जिसके सम्बन्ध में शिकायत मुख्यमंत्री तक पहुँची मन्त्री महोदय ने मामले की गंभीरता लेते हुए सम्बन्धित उच्चाधिकारियों द्वारा जाँच बैठाई जाती है । लेकिन गाँव में यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि व्यक्ति को नहीं बल्कि एक हरिजन को जिन्दा जलाया गया है । इस लघुकथा की जातिगत घृणा और भेदभाव की एक ही पंक्ति स्पष्ट कर देती है–"पंडितपुर में किसी व्यक्ति को तो नहीं, एक हरिजन को जरुर जलाया गया था ।"19 अंततः एक व्यक्ति को जब व्यक्तिवादी संज्ञा से हटाकर जातिवादी संज्ञा से आरोपित किया जाने लगे, तब यह मानवीय सभ्यता पर घातक प्रहार ही है।

निष्कर्षः

दलित विमर्श से जुड़ी लघुकथाएँ चाहे वे दलित लेखकों की और से आ रही हैं अथवा गैरदलित लेखकों की और से, उनमें दलित स्थिति पर स्पष्ट वर्णन देखने को मिल रहा है । इन लघुकथाओं में अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध स्वर मुखरित हुआ है । इतना जरुर है कि दलित–समाज संबंधी लेखन में बनी बनाई संवेदनाओं से आगे जाने की जरुरत है । देखा जाए तो गाँव में दलित विमर्श पर संवादों की कमी है । अतः जब तक आज का लघुकथाकार गाँव–गाँव में पहुँचेगा नहीं तब तक दलित विमर्श का समष्टिगत रूप सामने नहीं आयेगा । इन लघुकथाओं में कहीं विरोध–प्रतिरोध मिलता है।

अन्ततः दलित साहित्य, इतिहास, काव्य, कहानियों, उपन्यास, नाटक, आत्मकथाएँ, लघुकथाओं सहित सभी विधाओं में लिखा गया है । पर लघुकथाएँ दूसरों की खामियाँ ही नहीं देखती–दिखाती, अपने भी गिरेबाँ में झाँकना सिखाती है।

संदर्भसूचि

1. 'दलित साहित्य की अवधारणा', कंवल भारती, पृ. 25
2 'दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र', डॉ. शरण कुमार लिंबाले, पृ. 38
3 दलित और अश्वेत साहित्यः कुछ विचार, (सं.) चमन लाल, पृ. 24

4 रामकुमार घोटड़ (सं.) दलित समाज की लघुकथाएँ, पृ. 119
5. पड़ाव और पड़ताल (सं.) मधुदीप, पृ. 101
6 रामकुमार घोटड़ (सं.) दलित समाज की लघुकथाएँ, पृ. 119
7. सतीश दुबे की 66 लघुकथाएँ और उनकी पड़ताल, (सं.), मधुदीप, पृ. 105
8. वही, पृ. 69
9. दलित समाज की लघुकथाएँ, (सं.) रामकुमार घोटड़, पृ. 31
10 वही, पृ. 31
11. संरचना–10 (सं.), कमल चोपड़ा, 2017, पृ. 26
12. नईधारा (लघुकथांक 2009), पृ. 142
13. वही, पृ. 142
14. संरचना (लघुकथांक–2010) सं. कमल चोपड़ा, पृ. 26
15. संरचना (लघुकथांक–2017), (सं.) कमल चोपड़ा, पृ. 28
16. लघुकथा–सप्तक–4 (दलित–संदर्भ) सं. रामकुमार घोटड़, पृ. 33
17. संरचना (लघुकथांक–2012), पृ. 161
18. संरचना–2010, कमल चोपड़ा (सं.), पृ. 110
19. रामकुमार घोटड़ (सं.) दलित समाज की लघुकथाएँ, पृ. 57

RRIJM 2015, All Rights Reserved